Chapter दो

महाराज आग्नीध्र का चरित्र

इस अध्याय में महाराज आग्नीध्र के चरित्र का वर्णन किया गया है। जब महाराज प्रियव्रत आत्म-साक्षात्कार के हेतु चले गये, तो उनका पुत्र आग्नीध्र उनकी आज्ञानुसार जम्बूद्वीप का शासक बना जिसने इसके निवासियों का पिता की भाँति स्नेह के साथ पालन किया। एक बार महाराज आग्नीध्र को पुत्र प्राप्त करने की इच्छा हुई; अत: वे मन्दराचल की गुफा में तप करने के लिए प्रविष्ट हुए। उनकी इच्छा जानकर भगवान् ब्रह्मा ने आग्नीध्र की कुटी में पूर्वचित्ति नामक स्वर्ग की एक कन्या भेजी। वह अत्यन्त आकर्षक वेष बनाकर विविध प्रकार के स्त्रियोचित हाव-भावों के साथ उनके समक्ष आई। आग्नीध्र स्वभावत: उससे आकर्षित हो उठे। उस कन्या की गति, हावभाव, मुस्कान, मृदु वचन तथा चंचल चितवन उन्हें सम्मोहक लगी। आग्नीध्र चापलूसी में पटु थे अत: उन्होंने उस स्वर्ग-कन्या को मोह लिया और वह भी उनके मृदु वचनों में आकर उन्हें पति रूप में स्वीकार करने को तैयार हो गई। स्वर्ग में अपने लोक लौटने से पूर्व उसने अनेक वर्षों तक आग्नीध्र सहित राज-सुख भोगा। उसके गर्भ से आग्नीध्र के नौ पुत्र हुए जिनके नाम नाभि, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व तथा केतुमाल थे। उन्होंने उन्हें उनके नामवाले क्रमश: नौ द्वीप प्रदान किये। किन्तु आग्नीध्र की इन्द्रियाँ तुष्ट नहीं हुई थीं, अत: वे,जा अपनी नैसर्गिक पत्नी के विषय में सोचते रहते थे। इसलिए अगले जन्म में वे उसी के लोक में उत्पन्न हुए। आग्नीध्र की मृत्यु के पश्चात् उसके नवों पुत्रों ने मेरु की नौ पुत्रियों से विवाह कर लिया जिनके नाम मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा तथा देववीति थे।

श्रीशुक उवाच

एवं पितरि सम्प्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जम्बूद्वीपौकस: प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाण: पर्यगोपायत्. ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक:—श्रीशुकदेव गोस्वामी; उवाच—बोले; एवम्—इस प्रकार; पितरि—जब उसके पिता ने; सम्प्रवृत्ते—मुक्ति मार्ग ग्रहण किया; तत्-अनुशासने—उसकी आज्ञानुसार; वर्तमान:—वर्तमान,उपस्थित; आग्नीध्र:—राजा आग्नीध्र; जम्बू-द्वीप-

ओकसः—जम्बूदीप के वासी; प्रजाः—नागरिक; औरस-वत्—अपने पुत्रों के समान; धर्म—धार्मिक नियम; अवेक्षमाणः—कठोरता से पालन करते हुए; पर्यगोपायत्—पूर्णतया सुरक्षित।

श्री शुकदेव गोस्वामी आगे बोले—अपने पिता महाराज प्रियव्रत के इस प्रकार आध्यात्मिक जीवन पथ अपनाने के लिए तपस्या में संलग्न हो जाने पर राजा आग्नीध्र ने उनकी आज्ञा का पूरी तरह पालन किया और धार्मिक नियमों के अनुसार उन्होंने जम्बूद्वीप के वासियों को अपने ही पुत्रों के समान सुरक्षा प्रदान की।

तात्पर्य : महाराज आग्नीध्र ने अपने पिता महाराज प्रियव्रत की आज्ञानुसार धार्मिक नियमों का पालन करते हुए जम्बूद्वीप के वासियों पर राज्य किया। वर्तमान अश्रद्धा के युग में ये नियम पूर्णतया विरोधी हैं। यहाँ यह स्पष्ट कहा गया है कि राजा नागरिकों की वैसी ही देख-रेख करता था जिस प्रकार पिता अपने ही पुत्रों की करता है। यहाँ यह भी बताया गया है कि उसने नागरिकों पर किस प्रकार—*धर्मावेक्षमाणः* अर्थात् धार्मिक नियमों का दृढ़ता से पालन करते हुए राज्य किया। किसी शासक के लिए यह आवश्यक है कि वह देखे कि उसकी प्रजा धार्मिक नियमों का कठोर पालन करती है। वैदिक धर्म के नियम वर्णाश्रम धर्म से प्रारम्भ होते हैं। धर्म से तात्पर्य भगवान् द्वारा प्रदत्त नियमों से है। धर्म का पहला नियम है भगवान् द्वारा निर्दिष्ट चारों आश्रमों के कर्तव्यों का पालन। व्यक्तियों के गुणों तथा कर्मों के अनुसार समाज को पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में और फिर ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी में विभाजित किया जाता है। ये धार्मिक नियम हैं और राज्य के मुखिया (राजा) का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि उसके नागरिक इनका दृढ़ता से पालन करते हैं। उसे कोरे अधिकारी के रूप में कर्तव्य नहीं करना चाहिए, वरन् उसे पिता के तुल्य होना चाहिए जो अपने पुत्रों का सदैव हितैषी होता है। ऐसा पिता इसका पूरा ध्यान रखता है कि उसके पुत्र अपना कर्तव्यपालन कर रहे हैं और कभी-कभी वह उन्हें दंड भी देता है।

उपर्युक्त नियमों के विपरीत, कलियुग में राष्ट्रपति तथा प्रधान शासकगण केवल कर-संग्रह करने वाले हैं, जिन्हें इसकी तनिक भी परवाह नहीं रहती कि धार्मिक नियमों का पालन हो रहा है अथवा नहीं। सच तो यह है कि आज के प्रधान शासकगण सभी प्रकार के पापमय कार्यों का, विशेष रूप से व्यभिचार, मादक द्रव्य सेवन, पशुवध तथा द्यूत क्रीड़ा का सूत्रपात करते हैं। आजकल भारत में ये पापकर्म स्पष्ट देखे जा सकते हैं। यद्यपि एक शताब्दी पूर्व ये चार दुर्गुण भारतीय परिवारों में पूर्णतया

वर्जित थे, किन्तु अब प्रत्येक भारतीय परिवार में इनकी पैठ हो चुकी है, अत: वे धार्मिक नियमों का पालन नहीं कर पाते। प्राचीन राजाओं के नियम के विपरीत आधुनिक राज्य कर वसूलने के विज्ञापन में अधिक और नागरिकों के धार्मिक कल्याण के प्रति कम ध्यान देता है। अब राज्य धार्मिक नियमों के प्रति उदासीन है। *श्रीमद्भागवत* की भविष्यवाणी है कि कलियुग में शासन द्वारा दस्यु धर्म चलाया जाएगा, जिसका अर्थ होता है चोरों और उचक्कों द्वारा शासन। आधुनिक राज्यों के कर्णधार चोर और उचक्के ही हैं, जो नागरिकों की रक्षा करने के बजाय उनको लूटते हैं। यद्यपि चोर तथा उचक्के कानून की अवहेलना करके लूटपाट करते हैं, किन्तु इस कलियुग में कानून बनाने वाले स्वयं नागरिकों को लूटते हैं—ऐसा *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है। एक दूसरी भविष्यवाणी जिसे पूरा होना है, वह यह है कि नागरिकों तथा शासन के पापकर्मों से वर्षा दुर्लभ हो जायेगी, धीरे-धीरे पूर्ण अनावृष्टि के कारण अन्न नहीं उत्पन्न होगा। लोगों को मांस तथा बीज खाना पड़ेगा और अनेक सद्वृत्ति वाले मनुष्य अपने-अपने गृहों का त्याग कर देंगे, क्योंकि अकाल, कर तथा अनावृष्टि से वे अत्यधिक तंग हो उठेंगे। संसार को ऐसे विनाश से बचाने के लिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन ही एकमात्र आशा है। यह समस्त मानव समाज के वास्तविक कल्याण हेतु अत्यन्त वैज्ञानिक तथा प्रामाणिक आन्दोलन है।

स च कदाचित्पितृलोककाम: सुरवरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां भगवन्तं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मैकाछ्येण तपस्व्याराधयां बभूव. ॥ २॥

शब्दार्थ

स:—वह (राजा आग्नीध्र); च—भी; कदाचित्—एक बार; पितृलोक—पितृलोक की; काम:—इच्छा करते हुए; सुर-वर—श्रेष्ठ देवताओं में से; वनिता—स्त्री जाति; आक्रीडा—विहार-स्थली; अचल-द्रोण्याम्—मन्दराचल की एक घाटी में; भगवन्तम्—सर्व शक्तिमान (भगवान् ब्रह्मा) को; विश्व-सृजाम्—जिन विभूतियों ने इस ब्रह्माण्ड की रचना की; पतिम्—स्वामी को; आभृत—संग्रह करके; परिचर्या-उपकरण:—पूजा की सामग्री; आत्म—मन का; एक-अछ्येण—पूरे मनोयोग से; तपस्वी—तप करने वाला; आराधयाम् बभूव—आराधना में लग गया।.

एक बार महाराज आग्नीध्र ने सुयोग्य पुत्र प्राप्त करने तथा पितृलोक का वासी बनने की कामना से भौतिक सृष्टि के स्वामी भगवान् ब्रह्मा की आराधना की। वे मंदराचल की घाटी में गये जहाँ स्वर्गलोक की सुन्दरियाँ विहार करने आती हैं। वहाँ उन्होंने वाटिका से फूल तथा अन्य आवश्यक सामग्री एकत्र की और फिर कठिन तप तथा उपासना में लग गये।

तात्पर्य : राजा *पितृलोककाम* अर्थात् पितृलोक में जाने का इच्छुक हो गया। पितृलोक का उल्लेख

भगवद्गीता में हुआ है (*यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रता:*)। इस लोक में जाने के लिए उत्तम पुत्र होने चाहिए जो भगवान् विष्णु को भेंट चढ़ाने के पश्चात् जो कुछ बचे उसे अपने पितरों (पूर्वजों) को चढ़ाएँ। श्राद्ध संस्कार का उद्देश्य भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना है, जिससे उनके प्रसन्न होने के बाद जो प्रसाद बचे उसे अपने पितरों को दिया जा सके जिससे वे प्रसन्न हों। पितृलोक के वासी प्राय: कर्मकाण्डी होते हैं और अपने पुण्यकर्मों के कारण वहाँ भेजे गये होते हैं। वे वहाँ तब तक रहते हैं जब तक उनके वंशज उन्हें विष्णु-प्रसाद भेंट करते रहते हैं। किन्तु पितृलोक के प्रत्येक प्राणी को पुण्यकर्मों के फलों से क्षय होने पर इस पृथ्वी में वापस आना पड़ता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.२१) में पुष्टि की गई है—*क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति*—जो पुरुष पुण्यकर्म करते हैं, वे स्वर्ग भेजे जाते हैं, किन्तु जब उनके पुण्यकर्मों का प्रभाव समाप्त हो जाता है, तो वे पुन: पृथ्वी पर वापस भेज दिये जाते हैं।

चूँकि महाराज प्रियव्रत परम भक्त थे अत: उनसे ऐसा पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुआ होगा जो पितृलोक भेजे जाने का कामी हो? भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—*पितॄन् यान्ति पितृव्रता:*—जो व्यक्ति पितृलोक जाना चाहते हैं उन्हें वहाँ भेज दिया जाता है। इसी प्रकार *यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्*—जो पुरुष वैकुण्ठ लोक जाना चाहते हैं, वे भी वहाँ जा सकते हैं। चूँकि महाराज आग्नीध्र एक वैष्णव-पुत्र थे, अत: उन्होंने वैकुण्ठ लोक जाने की कामना की होगी। तो फिर वे पितृलोक में क्यों जाना चाहते थे? इसके उत्तर में *भागवत* के एक टीकाकार गोस्वामी गिरिधर की टिप्पणी है कि आग्नीध्र उस समय उत्पन्न हुए थे जब महाराज प्रियव्रत अत्यन्त कामासक्त थे। इसे तथ्य के रूप में ग्रहण किया जा सकता है, क्योंकि गर्भावस्था के समय जैसी मनोवृत्ति होती है उसी के अनुकूल पुत्र उत्पन्न होते हैं। अत: वैदिक प्रणाली के अनुसार पुत्रोत्पत्ति के पूर्व *गर्भाधान संस्कार* किया जाता है। इस संस्कार से पिता की मनोवृत्ति ऐसी हो जाती है कि जब वह अपनी पत्नी के गर्भ में वीर्य स्थापित करता है, तो उससे ऐसा पुत्र उत्पन्न होता है, जिसका मन भक्ति से ओतप्रोत हो। किन्तु सम्प्रति ऐसा गर्भाधान-संस्कार नहीं है, अत: जब पुरुषों में कामवासना रहती है तभी सन्तान उत्पन्न होती है। विशेष रूप से इस कलियुग में कोई गर्भाधान संस्कार नहीं रह गया प्रत्येक व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ कुत्तों तथा बिल्लियों जैसा संभोग करता है। अत: वैदिक आदेशों के अनुसार इस युग के सभी व्यक्ति प्राय: शूद्र कोटि के हैं।

निस्सन्देह, पितृलोक में भेजे जाने की कामना के पीछे महाराज आग्नीध्र की मनोवृत्ति शूद्र की सी नहीं थी; वे क्षत्रिय थे।

महाराज आग्नीध्र की इच्छा थी कि वे पितृलोक जाँए, इसलिए उन्हें पत्नी की आवश्यकता हुई, क्योंकि पितृलोक के इच्छुक पुरुष को अपने पीछे उत्तम पुत्र छोड़ जाना चाहिए जो प्रतिवर्ष भगवान् विष्णु से प्रसाद या पिण्ड उसे प्रदान करता रहे। उत्तम पुत्र पाने के लिए ही महाराज आग्नीध्र ने देवकुल की पत्नी चाही थी। अत: वे ब्रह्मा के आराधन हेतु मन्दराचल गये जहाँ सामान्य रूप से देवों की स्त्रियाँ आती हैं। *भगवद्गीता* (४.१२) में कहा गया है—*कांक्षन्त: कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवता:*—जो भौतिकतावादी इस संसार में शीघ्र फल चाहते हैं, वे देवताओं की पूजा करते हैं। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* से भी होती है—*श्रीऐश्वर्य-प्रजेप्सव:*—जो पुरुष सुन्दर पत्नी, प्रचुर धन तथा अनेक पुत्रों की कामना करते हैं, वे देवताओं को पूजते हैं। किन्तु बुद्धिमान भक्त तो इन सबकी कामना नहीं करता। वह भगवान् के धाम को तुरन्त वापस जाना चाहता है। इस प्रकार वह भगवान् विष्णु की उपासना करता है।

तदुपलभ्य भगवानादिपुरुष: सदसि गायन्तीं पूर्वचित्तिं नामाप्सरसमभियापयामास. ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; उपलभ्य—समझकर; भगवान्—सर्वशक्तिमान; आदि-पुरुष:—इस ब्रह्माण्ड में उत्पन्न पहले जीव; सदसि—सभा में; गायन्तीम्—नर्तकी; पूर्वचित्तिम्—पूर्वचित्ति; नाम—नामक; अप्सरसम्—स्वर्ग की नर्तकी, अप्सरा को; अभियापयाम् आस—नीचे भेजा।

इस ब्रह्माण्ड के सर्वशक्तिमान तथा आदि पुरुष भगवान् ब्रह्मा ने राजा आग्नीध्र की अभिलाषा जानकर अपनी सभा की श्रेष्ठ अप्सरा को, जिसका नाम पूर्वचित्ति था, चुनकर राजा के पास भेजा।

तात्पर्य : इस श्लोक में *भगवान् आदि-पुरुष:* शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही आदि-पुरुष हैं—*गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।* भगवान् श्रीकृष्ण आदि पुरुष हैं। *भगवद्गीता* में अर्जुन ने उन्हें *पुरुषं आद्यं* कह कर सम्बोधित किया है। वे भगवान् कहे जाते हैं। किन्तु इस श्लोक में ब्रह्मा को *भगवान् आदि-पुरुष:* कहा गया है। भगवान् कहने का कारण यह है कि वे भगवान् का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं और इस ब्रह्माण्ड के प्रथम जीव हैं। भगवान् ब्रह्मा महाराज आग्नीध्र की

अभिलाषा जान गये, क्योंकि वे भगवान् विष्णु के समान ही शक्तिमान हैं। जिस प्रकार परमात्मा पद पर स्थित भगवान् विष्णु जीवात्मा की अभिलाषा को जान लेते हैं उसी प्रकार से भगवान् ब्रह्मा भी जान लेते हैं, क्योंकि विष्णु उन्हें सूचित करने के माध्यम हैं। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१.१.१) में कहा गया है—*तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये*—भगवान् विष्णु अपने मन की प्रत्येक बात ब्रह्मा को बता देते हैं। चूँकि महाराज आग्नीध्र ने भगवान् ब्रह्मा की विशेष आराधना की, अत: वे उन पर परम प्रसन्न हुए और उनको संतुष्ट करने के लिए उन्होंने पूर्वचित्ति अप्सरा भेज दी।

सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं
विविधनिबिडविटपिविटपनिकरसंश्लिष्टपुरटलतारूढस्थलविहङ्गमिथुनै: प्रोच्यमानश्रुतिभि:
प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डवकलहंसादिभिर्विचित्रमुपकूजितामलजलाशयकमलाकरमुपबभ्राम.
॥ ४॥

शब्दार्थ

सा—वह (पूर्वचित्ति); च—भी; तत्—महाराज आग्नीध्र को; आश्रम—ध्यान-स्थल के; उपवनम्—छोटा उद्यान, पार्क; अति—अत्यन्त; रमणीयम्—सुन्दर; विविध—अनेक प्रकार के; निबिड—घना; विटपि—वृक्ष; विटप—डालों के; निकर—समूह; संश्लिष्ट—संलग्न; पुरट—स्वर्णिम; लता—लताओं सहित; आरूढ—ऊपर चढ़ी हुई; स्थल-विहङ्गम—स्थल के पक्षियों के; मिथुनै:—जोड़ों सहित; प्रोच्यमान—कूजन करते हुए; श्रुतिभि:—सुहावने शब्दों से; प्रतिबोध्यमान—प्रतिध्वनित; सलिल-कुक्कुट—जल-कुक्कुट; कारण्डव—बत्तख; कल-हंस—अनेक प्रकार के हंसों; आदिभि:—इत्यादि, सहित; विचित्रम्—नाना प्रकार के; उपकूजित—शब्द से प्रतिध्वनित; अमल—निर्मल; जल-आशय—सरोवर या झील में; कमल-आकरम्—कमल पुष्पों की खान; उपबभ्राम—में चलने लगी।.

श्री ब्रह्मा द्वारा भेजी गई अप्सरा उस उपवन के निकट विचरने लगी जहाँ राजा ध्यान में लगकर आराधना कर रहा था। वह उपवन सघन वृक्षों तथा स्वर्णिम लताओं के कारण अत्यन्त रमणीय था। वहाँ स्थल पर मयूर जैसे अनेक पक्षियों के जोड़े और सरोवर में बत्तख तथा हंस सुमधुर कूजन कर रहे थे। इस प्रकार वह उपवन वृक्षों, निर्मल जल, कमल पुष्प तथा सुमधुर कूजन करते विविध पक्षियों के कारण अत्यन्त सुन्दर लग रहा था।

तस्या: सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य
नरदेवकुमार: समाधियोगेनामीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट. ॥ ५॥

शब्दार्थ

तस्या:—उस (पूर्वचित्ति) के; सुललित—अत्यन्त सुन्दर; गमन—चाल; पद-विन्यास—चलने की शैली से; गति—आगे आगे; विलासाया:—जिनकी लीला; च—भी; अनुपदम्—प्रत्येक पग से; खण-खणायमान—झंकार करते हुए; रुचिर—अत्यन्त मनोहर; चरण-आभरण—चरणों के आभूषण; स्वनम्—ध्वनि को; उपाकर्ण्य—सुनकर; नरदेव-कुमार:—राजकुमार ने;

समाधि—समाधि दशा; योगेन—इन्द्रियों को नियंत्रित करके; आमीलित—अधखुले; नयन—नेत्र; नलिन—कमल की; मुकुल—कलियाँ; युगलम्—एक जोड़े के समान; ईषत्—कुछ-कुछ; विकचय्य—खोलकर; व्यचष्ट—देखा।.

ज्योंही अत्यन्त मनोहर गति तथा हावभाव से युक्त पूर्वचित्ति उस पथ से निकली त्योंही प्रत्येक पग पर उसके चरण-नूपुरों की झंकार निकलने लगी। यद्यपि राजकुमार आग्नीध्र अधखुले नेत्रों से योग साध कर इन्द्रियों को वश में कर रहे थे, किन्तु अपने कमल सदृश नेत्रों से वे उसे देख सकते थे। तभी उन्हें उसके कंगनों की मधुर झंकार सुनाई दी। उन्होंने अपने नेत्रों को कुछ और खोला, तो देखा कि वह उनके बिल्कुल निकट थी।

तात्पर्य : ऐसा कहा जाता है कि योगीजन सदैव भगवान् का ध्यान अपने हृदय में करते रहते हैं। *ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः* (*भागवत* १२.१३.१)। विषमयी इन्द्रियों को वश में करने वाले योगी भगवान् का नित्य दर्शन करते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, योगियों को *सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रम्*—अर्थात् अधखुले नेत्रों से साधना करनी चाहिए। यदि नेत्र पूर्णरूप से बन्द रहेंगे, तो नींद आ सकती है। किन्तु कुछ नामधारी योगी अपने नेत्रों को बन्द करके ध्यान धारण करते हैं। यह योग की ''फैशनपरस्त विधि'' है, किन्तु हमने ऐसे योगियों को ध्यान के समय सोते तथा खर्राटे लेते सुना है। यह योग की विधि नहीं है। वास्तविक योग साधने के लिए नेत्रों को अधखुला रखते हुए नासिका के अगले भाग को देखना चाहिए।

यद्यपि प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र योगाभ्यास कर रहे थे और प्रयास कर रहे थे अपनी इन्द्रियों को वश में करने के लिए, किन्तु पूर्वचित्ति के नूपुरों की झंकार से उनका ध्यान टूट गया। *योग इन्द्रियसंयमः*—वास्तविक योग का अर्थ है इन्द्रियों का नियंत्रण। मनुष्य को इन्द्रियों को वश में करने के लिए योगाभ्यास करना चाहिए, किन्तु भक्त अपनी शुद्ध इन्द्रियों से ईश्वर की सेवा में तत्पर रहता है, अतः उसका ध्यान भंग नहीं हो सकता (*हृषीकेण हृषीकेश-सेवनम्*)। अतः श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती ने कहा है—*दुर्दान्तेन्द्रिय-काल-सर्पपटली प्रोत्खात-दंष्ट्रायते* (*चैतन्य-चन्द्रामृत* ५)। निस्सन्देह योग्याभ्यास उपयोगी है, क्योंकि इससे विषधर तुल्य इन्द्रियाँ वशीभूत होती हैं। किन्तु जब कोई अपनी समस्त इन्द्रियों को ईश्वर की सेवा में लगाकर भक्ति करता है, तो इन्द्रियों का विषैलापन दूर हो जाता है। यह व्याख्या की जाती है कि सर्प से उसके विषदंतों के कारण डरा जाता है, किन्तु यदि उसके दाँतों को तोड़ दिया जाये तो सर्प भले ही डरावना लगे, किन्तु घातक नहीं होता। अतः भक्तों के समक्ष भले

ही हावभाव तथा सुललित भाव-भंगिमा करने वाली सैकड़ों-हजारों सुन्दरियाँ क्यों न उपस्थित हो जाँए, वे मोहित नहीं होते जबकि सामान्य योगी ऐसी सुन्दरियों से विपथ हो जाते हैं। यहाँ तक कि सिद्ध योगी विश्वामित्र ने मेनका से संभोग करने के लिए अपना योग भंग किया और उससे शकुन्तला उत्पन्न हुई। अत: योग का अभ्यास इन्द्रियों को वश में करने में पूर्ण समर्थ नहीं है। दूसरा उदाहरण आग्नीध्र का है जिनका ध्यान पूर्वचित्ति नामक अप्सरा के नुपूरों की मधुर झंकार से उसी तरह टूट गया जिस तरह विश्वामित्र का ध्यान मेनका की चूड़ियों की खनक से टूट गया था। राजकुमार स्वयं अत्यन्त सुन्दर था। जैसा यहाँ वर्णित है उसके नेत्र कमल की कली के समान थे और उसकी सुन्दर गति को देखने के लिए उस ने तुरन्त अपनी आँखें खोल ली। ज्योंही उसने अपने कमल-नेत्र खोले, तो देखा कि अप्सरा उसके पास ही उपस्थित है।

तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुर्घैर्गतिविहारव्रीडाविनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निजमुखविगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदान्धमधुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबरभाररशनां देवीं तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच. ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उसको; एव—निस्संदेह; अविदूरे—निकट ही; मधुकरीम् इव—मधुमक्खी के समान; सुमनस:—सुन्दर फूल; उपजिघ्रन्तीम्—सूँघती हुई; दिवि-ज—स्वर्गलोक में उत्पन्न होने वालों का; मनु-ज—मर्त्यलोक में जन्म लेने वालों का; मन:—मन; नयन—नेत्रों के लिए; आह्लाद—प्रसन्नता; दुघै:—उत्पन्न करती हुई; गति—अपनी चाल से; विहार—आमोद-प्रमोद से; व्रीडा—लज्जा से; विनय—विनयशीलता से; अवलोक—चितवन से; सु-स्वर-अक्षर—अपनी मधुर वाणी से; अवयवै:—शरीर के अंगों से; मनसि—मन में; नृणाम्—मनुष्यों के; कुसुम-आयुधस्य—हाथ में पुष्प-धनुष धारण करने वाले कामदेव का; विदधतीम्—करती हुई; विवरम्—कर्णगत; निज-मुख—अपने मुँह से; विगलित—उड़ेलती हुई; अमृत-आसव—मधु सदृश अमृत; स-हास—अपने हँसी में; भाषण—तथा बोलने में; आमोद—प्रसन्नता से; मद-अन्ध—नशे में अन्धा हुआ; मधुकर—मधुमक्खियों का; निकर—समूह; उपरोधेन—उसके चारों ओर से घिरे होने से; द्रुत—शीघ्रगामी; पद—पाँव का; विन्यासेन—भावपूर्ण पद चाप से; वल्गु—कुछ; स्पन्दन—गति; स्तन—उरोज; कलश—जल पात्र सदृश; कबर—बालों की चोटी; भार—भार; रशनाम्—करधनी; देवीम्—देवी को; तत्-अवलोकनेन—उसकी दृष्टि मात्र से; विवृत-अवसरस्य—अवसर पाकर; भगवत:—सर्वशक्तिमान का; मकर-ध्वजस्य—कामदेव का; वशम्—वश में; उपनीत:—लाया जाकर; जड-वत्—जड़ के समान; इति—इस प्रकार; ह—निश्चय ही; उवाच—वह बोला।

वह अप्सरा सुन्दर तथा आकर्षक फूलों को मधुमक्खी के समान सूँघ रही थी। वह अपनी चपल गति, लज्जा, विनय, चितवन तथा मुख से निकलने वाली मधुर ध्वनि और अपने अंगों की गति से मनुष्यों तथा देवताओं के मन तथा ध्यान को आकर्षित करने वाली थी। इन सब गुणों के कारण उसने मनुष्यों के मनों में कुसुम धनुषधारी कामदेव के स्वागतार्थ कानों के मार्ग खोल

दिये थे। जब वह बोलती, तो उसके मुख से अमृत झरता था। उसके श्वास लेने पर श्वास का स्वाद लेने के लिए भौंरे मदान्ध होकर उसके कमलवत् नेत्रों के चारों ओर मँडराने लगते। इन भौंरों से विचलित होकर वह जल्दी-जल्दी चलने का प्रयत्न करने लगी, किन्तु जल्दी चलने के लिए पैर उठाते ही उसके केश, उसकी करधनी तथा उसके जलकलश तुल्य स्तन इस प्रकार गति कर रहे थे, जिससे वह अत्यन्त मनोहर एवं आकर्षक लग रही थी। दरअसल ऐसा प्रतीत होता था मानो वह अत्यन्त बलशाली कामदेव के लिए प्रवेश-मार्ग बना रही हो। अतः राजकुमार उसे देखकर पूर्णतया वशीभूत हो गया और उससे इस प्रकार बोला।

तात्पर्य : इस श्लोक में अत्यन्त सुन्दर ढंग से यह वर्णन किया गया है कि किसी सुन्दर स्त्री की गति तथा हावभाव, उसके केश तथा उसके स्तनों, नितम्बों और अन्य अंगों की रचना न केवल पुरुषों के मन को वरन् देवताओं के मन को भी मोह लेती है। *दिविज* तथा *मनुज* शब्द विशेष रूप से यह पुष्टि करते हैं कि स्त्रियों के संकेतों का आकर्षण न केवल इस लोक के प्राणियों को वरन् स्वर्गलोक के प्राणियों को भी मोहने वाला है। कहा जाता है कि स्वर्गलोक के प्राणियों का जीवन-स्तर मर्त्यलोक के जीवन-स्तर से कई हजार गुना उच्च है। अतः वहाँ की सुन्दर स्त्रियों का शरीर पृथ्वी पर रहने वाली स्त्रियों के शरीर से हजारों गुना अधिक लुभावना होगा। सृष्टिकर्ता ने स्त्रियों को इस प्रकार निर्मित किया है कि उनकी मधुर ध्वनि, चाल तथा उनके नितम्बों, उरोजों और अन्य अंगों का मनोहर रूप न केवल पृथ्वी पर के वरन् स्वर्ग तक के पुरुषों को आकर्षित करता है और उनमें काम-भाव जागरित हो उठते हैं। जब कोई पुरुष कामदेव अथवा स्त्री सौंदर्य के वशीभूत होता है, तो वह पत्थर के तुल्य जड़ हो जाता है। स्त्रियों के अंग-चालन से मोहित होकर पुरुष इसी भौतिक संसार में रहना चाहता है। इस प्रकार स्त्री के सुन्दर दर्शन तथा गति मात्र से वह वैकुंठ लोक नहीं जा पाता है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने समस्त भक्तों को सुन्दरियों के आकर्षण एवं भौतिकतावादी सभ्यता से दूर रहने के लिए सचेत किया है। उन्होंने प्रतापरुद्र महाराज को देखने से भी इनकार कर दिया था, क्योंकि इस संसार में वह अत्यन्त ऐश्वर्यवान व्यक्ति था। इस सम्बन्ध में श्री चैतन्य महाप्रभु का कहना है—*निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य*—''जो ईश्वर की भक्ति में रत हैं और भगवान् के धाम वापस जाना चाहते हैं उन्हें स्त्रियों के सुन्दर हावभाव से तथा अत्यन्त धनी पुरुषों के दर्शन से दूर रहना चाहिए।''

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य

पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।

सन्दर्शनं विषयिणाम् अथ योषितां च

हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥

"अहो! जो इस संसार-सागर को तरना चाहता है और भगवान् की निष्काम तथा दिव्य प्रेमाभक्ति में लगा हुआ है उसके लिए इन्द्रियभोग में लिप्त भौतिकतावादी पुरुष या स्त्री का दर्शन स्वेच्छा से विषपान करने से भी जघन्य है।"(*चैतन्य-चरितामृत* मध्य ११.८)। अत: जो भगवान् के धाम को वापस जाना चाहता है उसे चाहिए कि वह स्त्री के आकर्षक अंगों तथा धनी पुरुषों की सम्पत्ति के विषय में तनिक भी न सोचे। ऐसा सोचने से आध्यात्मिक जीवन की प्रगति रुक जाती है। किन्तु यदि भक्त एक बार कृष्णभावनामृत में स्थिर हो गया, तो ये आकर्षण उसके मन को क्षुब्ध नहीं करते।

का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले
मायासि कापि भगवत्परदेवताया: ।
विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे
किं वा मृगान्मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥ ७॥

शब्दार्थ

का—कौन; त्वम्—तुम हो; चिकीर्षसि—क्या करना चाहते हो; च—भी; किम्—क्या; मुनि-वर्य—हे मुनिश्रेष्ठ; शैले—इस पर्वत पर; माया—माया; असि—हो; कापि—कुछ; भगवत्—भगवान्; पर-देवताया:—दिव्य ईश्वर का; विज्ये—बिना डोरी के; बिभर्षि—धारण किये हुए; धनुषी—दो धनुष; सुहृत्—मित्र का; आत्मन:—अपने; अर्थे—हेतु; किम् वा—अथवा; मृगान्—जंगली पशु; मृगयसे—आखेट करने का प्रयत्न कर रहे हो; विपिने—इस वन में; प्रमत्तान्—धन से मतवालों का।

राजकुमार ने भूल से अप्सरा को सम्बोधित किया—हे मुनिवर्य, तुम कौन हो? इस पर्वत पर क्यों आये हो और क्या करना चाहते हो? क्या तुम भगवान् की कोई माया हो? तुम बिना डोरी वाले इन दो धनुषों को क्यों धारण किये हो? क्या इनसे कोई तुम्हारा प्रयोजन है या अपने मित्र के लिए इन्हें धारण किये हुए हो? सम्भवत: तुम इन्हें इस वन के मतवाले (पागल) पशुओं को मारने के लिए धारण किये हो।

तात्पर्य : वन में कठिन तपस्या करते हुए आग्नीध्र ब्रह्मा द्वारा भेजी गई पूर्वचित्ति की भंगिमाओं से मोहित हो गये। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना:*—कामी पुरुष अपनी बुद्धि गँवा बैठता है। अत: बुद्धि खोने के पश्चात् आग्नीध्र स्त्री तथा पुरुष में अन्तर नहीं कर पाये। उन्होंने उसे

मुनि-पुत्र समझा इसलिए उसे *मुनिवर्य* कह कर सम्बोधित किया। किन्तु उसकी सुन्दरता के कारण उन्हें विश्वास नहीं हो पाया कि वह किशोर है, अत: उन्होंने उसके अंगों को ध्यान से देखना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उन्हें उसकी दो भौंहें दिखाई पड़ीं जिनको देख कर उन्हें भ्रम हुआ कि कहीं वह भगवान् की माया तो नहीं है। इसके लिए *भगवत्-पर-देवताया:* शब्दों का प्रयोग हुआ है। *देवता* अर्थात् देवतागण इस भौतिक जगत से सम्बन्धित हैं, किन्तु भगवान् इस भौतिक लोक से परे रहते हैं, अत: *पर-देवता* कहलाते हैं। यह भौतिक जगत माया के द्वारा सृजित है, किन्तु *पर-देवता* भगवान् के आदेश के अनुसार इसका सृजन होता है। जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है (*मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्*), इस संसार की सृष्टि का परम नियन्ता माया नहीं है। माया श्रीकृष्ण की ओर से कर्म करती है।

पूर्वचित्ति की भौंहें इतनी सुन्दर थीं कि आग्नीध्र ने उनकी तुलना डोरी विहीन धनुषों से की। इसलिए उन्होंने पूछा कि वे उसके अपने प्रयोजन के लिए थे, अथवा किसी अन्य के लिए थे। उसकी भौंहें वन के पशुओं को मारने के लिए प्रयुक्त धनुषों जैसी थीं। यह संसार वन के तुल्य है और उसके निवासी वन के पशुओं यथा हिरन तथा बाघ जैसे हैं जिनका शिकार किया जाता है। सुन्दर स्त्री की भौंहें ही उन्हें मारने वाली हैं। स्त्री की सुन्दरता से मोहित होकर संसार के सभी मनुष्य बिना डोरी वाले धनुष से मार दिये जाते हैं, किन्तु कोई यह नहीं देख पाता कि माया उन्हें किस प्रकार मारती है। पर यथार्थ में वे मारे जाते हैं (*भूत्वा भूत्वा प्रलीयते*)। अपनी तपस्या से आग्नीध्र जान सके कि भगवान् के आदेश से माया किस प्रकार कार्य करती है।

प्रमत्तान् शब्द भी महत्त्वपूर्ण है। *प्रमत्त* का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो अपनी इन्द्रियों को अपने वश में नहीं कर पाता। समस्त संसार ऐसे ही प्रमत्त या विमूढ़ व्यक्तियों द्वारा शोषित हो रहा है। अत: प्रह्लाद महाराज ने कहा है (*भागवत* ७.९.४३)—

शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ-

मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्।

''वे क्षणिक सुख के लिए विषयों में सड़ते रहते हैं और इन्द्रिय भोग के लिए ही दिन-रात श्रम करते हुए जीवन नष्ट कर रहे हैं, उन्हें ईश्वर से किसी प्रकार का लगाव नहीं रहता। मैं उन्हीं के लिए

शोचमग्न हूँ और उन्हें माया के चंगुल से मुक्त करने की विभिन्न युक्तियाँ सोच रहा हूँ।'' शास्त्रों में इन्द्रियतुष्टि के लिए कर्म करने वाले कर्मियों को प्रमत्त, विमुख तथा विमूढ़ कहा गया है। ये माया के द्वारा मारे जाते हैं। किन्तु जो अप्रमत्त अथवा धीर हैं, वे भली भाँति जानते रहते हैं कि मनुष्य का मुख्य कर्तव्य परम पुरुष की सेवा करना है। जो माया के अदृश्य धनुष तथा बाण से प्रमत्त हैं उन्हें वह मारने के लिए सदा तत्पर रहती है। आग्नीध्र ने पूर्वचित्रि से इस सबके बारे में पूछा।

बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ
शान्तावपुङ्खरुचिरावतितिग्मदन्तौ ।
कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन्न विद्मः
क्षेमाय नो जडधियां तव विक्रमोऽस्तु ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

बाणौ—दो बाण; इमौ—ये; भगवतः—आपके, सर्वशक्तिमान के; शत-पत्र-पत्रौ—कमल की पंखुडियों जैसे पंखों वाले; शान्तौ—शान्त; अपुङ्ख—पंखरहित; रुचिरौ—अत्यन्त सुन्दर; अति-तिग्म-दन्तौ—अत्यन्त तीक्ष्ण नोक वाले; कस्मै—किसको; युयुङ्क्षसि—बेध देना चाहते हो; वने—वन में; विचरन्—इधर-उधर घूमते हुए; न विद्मः—हम समझ नहीं सकते; क्षेमाय—कल्याण के लिए; नः—हमारे; जड-धियाम्—जड़-बुद्धि वालों को; तव—तुम्हारा; विक्रमः—शौर्य; अस्तु—हो।

तब आग्नीध्र ने पूर्वचित्ति के बाँके नेत्रों को देखा और कहा—हे मित्र, तुम्हारे बाँके नेत्र दो अत्यन्त शक्तिशाली बाण हैं। इन बाणों में कमल पुष्प की पंखुड़ियों जैसे पंख हैं। मूठरहित होने पर भी वे अत्यन्त सुन्दर हैं और उनके सिरे नुकीले तथा भेदने वाले हैं। वे अत्यन्त शान्त लगते हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी पर नहीं छोड़े जाएँगे। तुम इस वन में किसी न किसी को इन बाणों से बेधने के लिए विचरण कर रहे होगे, किन्तु किसे? यह मैं नहीं जानता। मेरी बुद्धि भी मन्द पड़ गई है और मैं तुम्हारा सामना नहीं कर सकता। दरअसल, पराक्रम में कोई भी तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता; इसीलिए मेरी प्रार्थना है कि तुम्हारा पराक्रम मेरे लिए कल्याणकारी हो।

तात्पर्य : आग्नीध्र पूर्वचित्ति के कटाक्ष की प्रशंसा करने लगे। उन्होंने उसके बाँके नेत्रों की तुलना तीक्ष्ण तीरों से की। यद्यपि उसके नेत्र कमल सदृश सुन्दर थे, किन्तु साथ ही वे मूठहीन तीरों के समान थे इसलिए आग्नीध्र उनसे भयभीत हो गया। उन्हें आशा थी कि उसके कटाक्ष उनके अनुकूल होंगे क्योंकि वे पहले से मोहित थे और जितना ही अधिक मोहित होते उनके लिए उसके बिना रह पाना उतना ही कठिन होगा। इसीलिए आग्नीध्र ने पूर्वचित्ति से प्रार्थना की कि उसके कटाक्ष उनके लिए

कल्याणकारी हों। दूसरे शब्दों में, उन्होंने प्रार्थना की कि वह उनकी पत्नी बन जाये।

शिष्या इमे भगवतः परितः पठन्ति
गायन्ति साम सरहस्यमजस्त्रमीशम् ।
युष्मच्छिखाविलुलिताः सुमनोऽभिवृष्टीः
सर्वे भजन्त्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

शिष्याः—शिष्य; इमे—ये; भगवतः—पूज्य के; परितः—चारों ओर से घेरे हुए; पठन्ति—सुना रहे हैं; गायन्ति—गायन कर रहे हैं; साम—सामवेद; स-रहस्यम्—रहस्ययुक्त; अजस्त्रम्—निरन्तर; ईशम्—ईश्वर को; युष्मत्—तुम्हारी; शिखा—चोटी से; विलुलिताः—गिरे हुए; सुमनः—पुष्पों की; अभिवृष्टीः—वृष्टि; सर्वे—समस्त; भजन्ति—भोगते हैं; ऋषि-गणाः—ऋषि, मुनि; इव—सदृश; वेद-शाखाः—वैदिक शास्त्रों की शाखाएँ।

पूर्वचित्ति का अनुगमन करने वाले भौरों को देखकर महाराज आग्नीध्र बोले—भगवन्, ऐसा प्रतीत होता है मानो तुम्हारे शरीर को घेरे हुए ये भौंरे अपने पूज्य गुरु को घेरे हुए शिष्य हैं। वे सामवेद तथा उपनिषद् के मंत्रों का निरन्तर गायन कर रहे हैं और इस प्रकार तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं। जैसे ऋषिगण वैदिक शास्त्रों की शाखाओं का अनुसरण करते हैं, ये भौंरें तुम्हारी चोटी से झड़ने वाले पुष्पों का आनन्द ले रहे हैं।

वाचं परं चरणपञ्जरतित्तिरीणां
ब्रह्मन्नरूपमुखरां शृणवाम तुभ्यम् ।
लब्धा कदम्बरुचिरङ्गविटङ्कबिम्बे
यस्यामलातपरिधिः क्व च वल्कलं ते ॥ १० ॥

शब्दार्थ

वाचम्—गुंजरित ध्वनि; परम्—एकमात्र; चरण-पञ्जर—नूपुरों की; तित्तिरीणाम्—तीतरों की; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; अरूप—बिना रूप के; मुखराम्—स्पष्ट सुनाई पड़ने वाला; शृणवाम—मैं सुनता हूँ; तुभ्यम्—तुम्हारा; लब्धा—प्राप्त; कदम्ब—कदम्ब पुष्प सदृश; रुचिः—मनोहर रंग; अङ्ग-विटङ्ग-बिम्बे—सुन्दर गोल नितम्बों पर; यस्याम्—जिस पर; अलात-परिधिः—ज्वलित अंगारों का घेरा; क्व—कहाँ; च—भी; वल्कलम्—ढकने के लिए वस्त्र; ते—तुम्हारा।

हे ब्राह्मण, मुझे तो तुम्हारे नूपुरों की झंकार ही सुनाई पड़ती है। ऐसा लगता है उनके भीतर तीतर पक्षी चहक रहे हैं। मैं उनके रूपों को नहीं देख रहा, किन्तु मैं सुन रहा हूँ कि वे किस प्रकार चहक रहे हैं। जब मैं तुम्हारे सुन्दर गोल नितम्बों को देखता हूँ, तो मुझे लगता है कि मानो वे कदम्ब के पुष्पों का सुन्दर रंग लिए हों। तुम्हारी कमर में जाज्वल्यमान अंगारों की मेखला पड़ी हुई है। दरअसल, ऐसा लगता है कि तुम वस्त्र धारण करना भूल गये हो।

तात्पर्य : पूर्वचित्ति को कामुक भाव से देखते हुए आग्नीध्र ने उस तरुणी के आकर्षक नितम्बों

तथा कटि भाग पर दृष्टि फेरी। जब मनुष्य किसी स्त्री को इस प्रकार कामेच्छा से देखता है, तो वह उसके मुख, स्तन तथा कटि पर मोहित हो जाता है, क्योंकि पुरुष को अपनी वासना तृप्त करने के लिए स्त्री पहले पहल अपनी सुन्दर मुखाकृति, अपने उरोजों के उभार और कटिभाग से आकर्षित करती है। पूर्वचित्ति ने सुन्दर पीला रेशमी वस्त्र पहन रखा था, अत: उसके नितम्ब कदम्ब पुष्प के समान लग रहे थे। करधनी के कारण उसकी कमर जाज्वल्यमान अंगारों से घिरी प्रतीत हुई। यद्यपि वह वस्त्रों से पूर्णत: सज्जित थी, किन्तु आग्नीध्र इतना काममोहित हो गया था कि उसे पूछना पड़ा ''तुम वस्त्ररहित होकर क्यों आई हो?''

किं सम्भृतं रुचिरयोर्द्विज शृङ्गयोस्ते
मध्ये कृशो वहसि यत्र दृशि: श्रिता मे ।
पङ्कोऽरुण: सुरभीरात्मविषाण ईदृग्
येनाश्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; सम्भृतम्—भरा हुआ; रुचिरयो:—अत्यन्त सुन्दर; द्विज—हे ब्राह्मण; शृङ्गयो:—दो सींगों के भीतर; ते—तुम्हारा; मध्ये—बीच में; कृश:—पतली; वहसि—धारण करते हो; यत्र—जिसमें; दृशि:—आँखें; श्रिता—टिकी हुई; मे—मेरी; पङ्क:—चूर्ण; अरुण:—लाल; सुरभि:—सुगंधित; आत्म-विषाणे—दो सींगों पर; ईदृक्—ऐसा; येन—जिसके द्वारा; आश्रमम्—आश्रम; सु-भग—हे भाग्यवान्; मे—मेरा; सुरभी-करोषि—सुगन्धित बना रहे हो।

तब आग्नीध्र ने पूर्वचित्ति के उभरे हुए उरोजों की प्रशंसा की। उन्होंने कहा—हे ब्राह्मण, तुम्हारी कमर अत्यन्त पतली है, किन्तु फिर भी तुम कष्ट सह कर इन दो सींगों को धारण कर रहे हो जिन पर मेरे नेत्र अटक गये हैं। इन दोनों सुन्दर सीगों के भीतर क्या भरा है? तुमने इनके ऊपर सुगन्धित लाल-लाल चूर्ण छिड़क रखा है मानो अरुणोदय का सूर्य हो। हे भाग्यवान्, क्या मैं पूछ सकता हूँ कि तुम्हें ऐसा सुगन्धित चूर्ण कहाँ से मिला जो मेरे आश्रम को सुरभित कर रहा है?

तात्पर्य : आग्नीध्र ने पूर्णचित्ति के उन्नत उरोजों की प्रशंसा की। उसके उरोजों को देखकर वह लगभग प्रमत्त हो उठा। तो भी वह नहीं पहचान पाया कि पूर्वचित्ति किशोर था या कोई किशोरी; इसीलिए उसने उसे *द्विज* (हे ब्राह्मण!) कहकर सम्बोधित किया। किन्तु द्विज अर्थात् ब्राह्मण बालक के वक्षस्थल पर सींग क्यों हों? क्योंकि बालक की कमर पतली थी, आग्नीध्र ने सोचा कि वह अत्यन्त कठिनाई से इनका भार ढो रहा है, अत: इनके भीतर अवश्य ही कुछ मूल्यवान वस्तु भरी होगी।

अन्यथा वह उनको क्यों वहन कर रहा है? जब किसी स्त्री की कटि पतली और उरोज उठे हुए होते हैं, तो वह अत्यन्त आकर्षक लगती है। आग्नीध्र ने मोहित नेत्रों से कृश शरीर वाली लड़की के लाल स्तनों का चिन्तन किया और कल्पना की कि उसके नितम्ब इसको कैसे वहन करते होंगे। आग्नीध्र ने कल्पना की कि उसके उन्नत उरोज उसके दो सींग हैं, जिन्हें उसने वस्त्र से इसलिए ढक रखा था, जिससे उनके भीतर के बहुमूल्य पदार्थ को कोई देख न सके। किन्तु आग्नीध्र उनको देखने के लिए अत्यन्त व्यग्र था, अत: उसने प्रार्थना की "कृपया इनसे आवरण हटा दो जिससे मैं देख सकूँ कि इनके भीतर क्या भरा है। विश्वास रखो कि मैं उन्हें ले नहीं भागूँगा। यदि तुम्हें कुछ असुविधा हो तो क्या मैं स्वयं खोलकर देख सकता हूँ कि इन उन्नत सींगों के भीतर क्या है?" वे उसके स्तनों के ऊपर फैले हुए सुरभित कुंकुम के लाल चूर्ण से चकित थे। इतने पर भी उसने पूर्वचित्ति को बालक समझ कर उसे *सुभग* अर्थात् भाग्यशाली मुनि कह कर सम्बोधित किया। यह बालक भाग्यशाली रहा होगा, अन्यथा इसके वहाँ खड़े होने से आग्नीध्र का पूरा आश्रम कैसे महक सकता था?

लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे
यत्रत्य इत्थमुरसावयवावपूर्वौ ।
अस्मद्विधस्य मनउन्नयनौ बिभर्ति
बह्वद्भुतं सरसराससुधादि वक्त्रे ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

लोकम्—आवास स्थान, देश; प्रदर्शय—दिखा दो; सुहृत्-तम—हे श्रेष्ठ मित्र, मित्रवर; तावकम्—इस प्रकार; मे—मुझको; यत्रत्य:—जिसमें उत्पन्न पुरुष; इत्थम्—इस तरह; उरसा—वक्षस्थल से; अवयवौ—दो अंग (उरोज); अपूर्वौ—अपूर्व; अस्मत्-विधस्य—मुझ जैसे व्यक्ति को; मन:-उन्नयनौ—चित्त को क्षुब्ध करने वाला; बिभर्ति—बना हुआ है; बहु—अनेक; अद्भुतम्—अद्भुत; सरस—मृदुवचन; रास—मुस्कान जैसा हावभाव; सुधा-आदि—अमृत के तुल्य; वक्त्रे—मुख में।

मित्रवर, क्या तुम मुझे अपना निवास स्थान दिखा सकते हो? मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि उस स्थान के वासियों को तुम्हारे उन्नत उरोजों के समान अद्भुत् शारीरिक अंग किस तरह प्राप्त हुए हैं, जो मुझ जैसे देखने वाले के मन तथा नेत्रों को उद्वेलित कर रहे हैं। उनकी मधुर वाणी तथा मृदु मुस्कान से इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि उनके मुख में अमृत बसता होगा।

तात्पर्य : प्रमत्त आग्नीध्र ने उस स्थान को भी जानना चाहा जहाँ से वह ब्राह्मण-बालक आया था और जहाँ के मनुष्यों के वक्षस्थल इस प्रकार उठे हुए थे। उन्होंने सोचा कि सम्भवत: ऐसे आकर्षक अंग उनकी कठिन तपस्या के फलस्वरूप हों। आग्नीध्र ने इस बालिका को *सुहृत्तम* कहकर सम्बोधित

किया जिससे वह उसे वहाँ ले जाने से कहीं अस्वीकार न कर दे। आग्नीध्र न केवल उस बालिका के उन्नत उरोजों से मोहित थे, वरन् उसकी मधुरवाणी से भी आकृष्ट थे। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके मुख से अमृत निकल रहा हो। इसलिए वे अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गये।

का वात्मवृत्तिरदनाद्धविरङ्ग वाति
विष्णोः कलास्यनिमिषोन्मकरौ च कर्णौ ।
उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपङ्क्ति शोचि-
रासन्नभृङ्गनिकरं सर इन्मुखं ते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

का—क्या; वा—तथा; आत्म-वृत्तिः—शरीर के पालन हेतु भोजन; अदनात्—पान के चबाने से; हविः—यज्ञ की हवन सामग्री; अङ्ग—मेरे प्रिय मित्र; वाति—फैल रही है; विष्णोः—भगवान् विष्णु के; कला—शरीर का अंश; असि—हो; अनिमिष—अपलक; उन्मकरौ—दो उज्ज्वल मगर; च—भी; कर्णौ—दो कान; उद्विग्न—परेशान, अस्थिर; मीन-युगलम्—दो मछलियों सहित; द्विज-पङ्क्ति—दाँतों की पाँत; शोचिः—सुन्दरता; आसन्न—सन्निकट; भृङ्ग-निकरम्—भौंरों का समूह; सरः इत्—सरोवर के सदृश; मुखम्—मुँह; ते—तुम्हारा।

मित्रवर, शरीर पालने के लिए तुम क्या खाते हो? ताम्बूल चबाने से तुम्हारे मुख से सुगन्ध फैल रही है। इससे यह सिद्ध होता है कि तुम सदैव विष्णु का प्रसाद खाते हो। निश्चय ही तुम भगवान् विष्णु के अंश स्वरूप हो। तुम्हारा मुख मनोहर सरोवर के समान सुन्दर है। तुम्हारे रत्नजटित कुंडल उन दो उज्ज्वल मकरों के तुल्य हैं जिनके नेत्र विष्णु के समान अपलक रहने वाले हैं। तुम्हारे दोनों नेत्र दो चंचल मछलियों के सदृश हैं। इस प्रकार तुम्हारे मुख-सरोवर में दो मकर तथा दो चंचल मछलियाँ एक साथ तैर रही हैं। इनके अतिरिक्त तुम्हारे दाँतों की धवल पंक्ति जल में श्वेत हंसों की पंक्ति के सदृश प्रतीत होती है और तुम्हारे बिखरे बाल तुम्हारे मुख की शोभा का पीछा करने वाले भौंरों के झुंड के समान हैं।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु के भक्त उन्हीं के अंश भी हैं और *विभिन्नांश* कहलाते हैं। भगवान् विष्णु को सभी प्रकार की हवियाँ भेंट की जाती हैं और भक्तगण उनका बचा हुआ भोजन, अर्थात् प्रसाद खाते हैं, अतः हवि की सुगन्धि न केवल विष्णु से निकलती है, वरन् प्रसाद पाने वाले भक्तों के शरीरों से भी निकलती है। आग्नीध्र पूर्वचित्ति को उसके शरीर से निर्गत सुगन्धि के कारण भगवान् विष्णु का अंश मान रहे थे। इसके साथ ही साथ उसके मकराकार रत्नजटित कुंडलों, उसकी शरीर की सुगंध के पीछे मत्त होकर दौड़ने वाले भौंरों के समान काले बालों तथा हंसों के समान श्वेत दंतपंक्ति के कारण

आग्नीध्र ने उसके मुख की उपमा कमल पुष्पों, मछलियों, हंसों तथा भौंरों से अलंकृत सुन्दर सरोवर से दी।

योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतङ्गो
दिक्षु भ्रमन्भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे ।
मुक्तं न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं
कष्टोऽनिलो हरति लम्पट एष नीवीम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

यः—जो; असौ—वह; त्वया—तुम्हारे द्वारा; कर-सरोज—कमल के समान हथेली वाला; हतः—आहत; पतङ्गः—गेंद; दिक्षु—समस्त दिशाओं में; भ्रमन्—घूमते हुए; भ्रमतः—चल, अस्थिर; एजयते—विक्षुब्ध करता है; अक्षिणी—नेत्रों को; मे—मेरे; मुक्तम्—बिखरे हुए; न—नहीं; ते—तुम्हारा; स्मरसि—क्या तुम्हें सुधि है; वक्र—घुँघराले; जटा—बालों का; वरूथम्—समूह, लटें; कष्टः—कष्टदायी; अनिलः—वायु; हरति—बहा ले जाता है; लम्पटः—धूर्त, परस्त्री पर आसक्त सदृश; एषः—यह; नीवीम्—अधोवस्त्र।

मेरा मन पहले ही से चंचल है और तुम इस गेंद को अपनी कमल सदृश हथेली से इधर-उधर फेंक कर मेरे नेत्रों को विक्षुब्ध कर रहे हो। तुम्हारे घुँघराले केश अब बिखरे हुए हैं, किन्तु तुम्हें उनको सँभालने की सुधि नहीं है। तुम इन्हें सँभाल क्यों नहीं लेते? यह धूर्त वायु स्त्रियों में आसक्त लम्पट पुरुष के समान तुम्हारे अधोवस्त्र को उठाने का प्रयत्न कर रहा है। क्या तुम्हें इसकी खबर नहीं है?

तात्पर्य : पूर्वचित्ति अपने हाथों में गेंद लिए हुए खेल रही थी जो उसकी कमलवृत् हथेली में पकड़े एक अन्य कमल पुष्प सा लग रहा था। इधर-उधर गति करने से उसके केश शिथिल हो गये थे और उसका नीवीबन्धन खुल रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो धूर्त वायु उसे नंगा करना चाह रहा हो। फिर भी उसने अपने बाल सँवारने या अपना वस्त्र सँभालने की कोई परवाह नहीं की। आग्नीध्र इस बाला की अनावृत्त सुन्दरता का दर्शन करना चाहता था, अतः उसके हाव-भाव से उसके नेत्र चंचल हो उठे।

रूपं तपोधन तपश्चरतां तपोघ्नं
ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम् ।
चर्तुं तपोऽर्हसि मया सह मित्र मह्यं
किं वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥ १५॥

शब्दार्थ

रूपम्—सुन्दरता; तपः-धन—हे श्रेष्ठ तपस्वी; तपः चरताम्—तपस्या में संलग्न पुरुषों का; तपः-घ्नम्—तपों को विनष्ट करने वाला; हि—निश्चय ही; एतत्—यह; तु—निस्सन्देह; केन—किस; तपसा—तपस्या के द्वारा; भवता—तुम्हारे द्वारा; उपलब्धम्—प्राप्त किया; चर्तुम्—करने के लिए; तपः—तप; अर्हसि—तुम्हें चाहिए; मया सह—मेरे साथ; मित्र—हे मित्र; मह्यम्—मुझको; किम् वा—अथवा सम्भव है; प्रसीदति—प्रसन्न होता है; सः—वह; वै—निश्चय ही; भव-भावनः—इस ब्रह्माण्ड का सृजनकर्ता; मे—मेरे साथ।.

हे श्रेष्ठ तपस्वी, तुम्हें दूसरों की तपस्या को भंग करने वाला यह अद्भुत् रूप कहाँ से प्राप्त हुआ? तुमने यह कला कहाँ से सीखी? हे मित्र, तुमने इस सुन्दरता को प्राप्त करने के लिए कौन सा तप किया है? मेरी इच्छा है कि तुम मेरे साथ तपस्या में सम्मिलित हो जाओ, क्योंकि हो सकता है कि इस ब्रह्माण्ड के स्त्रष्टा भगवान् ब्रह्मा ने मुझ पर प्रसन्न होकर तुम्हें मेरी पत्नी बनने के लिए भेजा हो।

तात्पर्य : आग्नीध्र ने पूर्वचित्ति के अपूर्व सौंदर्य की प्रशंसा की। दरअसल, उसे ऐसा अद्वितीय सौंदर्य देखकर आश्चर्य हुआ जो पूर्व तपस्या का फल हो सकता है; इसीलिए उसने उस बालिका से प्रश्न किया कि उसने यह रूप कहीं अन्यों की तपस्या को भंग करने के लिए तो नहीं प्राप्त किया। उसने विचार किया कि हो न हो, ब्रह्माण्ड के सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ने उस पर प्रसन्न होकर ही उसे उसकी पत्नी बनने के उद्देश्य से भेजा है। उसने पूर्वचित्ति से पत्नी बनने की प्रार्थना की जिससे वे दोनों मिलकर तपस्या कर सकें। दूसरे शब्दों में, यदि पति तथा पत्नी आत्म-ज्ञान के एक ही धरातल पर हों, तो उपयुक्त पत्नी गृहस्थ जीवन में तपस्या करने में अपने पति की सहयोगी होती है। आत्म-ज्ञान के बिना पति तथा पत्नी समान पद पर स्थित नहीं हो पाते। भगवान् ब्रह्मा की यही इच्छा रहती है कि अच्छी संतति जन्मे, अतः जब तक वे प्रसन्न नहीं होते किसी को अनुकूल पत्नी नहीं मिल सकती। वास्तव में विवाहोत्सव में ब्रह्मा की उपासना की जाती है। आज भी भारत में विवाह के निमंत्रण पत्रों के ऊपर भगवान् ब्रह्मा का चित्र बना रहता है।

न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं
यस्मिन्मनो दृगपि नो न वियाति लग्नम् ।
मां चारुशृङ्ग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं ते
चित्तं यतः प्रतिसरन्तु शिवाः सचिव्यः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; त्वाम्—तुमको; त्यजामि—छोड़ूँगा; दयितम्—अत्यन्त प्रिय; द्विज-देव—ब्राह्मणों के उपास्य देवता, भगवान् ब्रह्मा से; दत्तम्—दिया हुआ; यस्मिन्—जिसको; मनः—मन; दृक्—आँखें; अपि—भी; नः—मेरा; न वियाति—दूर नहीं जाता है;

लग्नम्—दृढ़तापूर्वक लगा हुआ; माम्—मुझको; चारु-शृङ्गि—हे सुन्दर उन्नत उरोजों वाली स्त्री; अर्हसि—तुम्हे चाहिए; नेतुम्—पथ प्रदर्शन करना; अनुव्रतम्—अनुयायी; ते—तुम्हारा; चित्तम्—आकांक्षा; यतः—जहाँ कहीं भी; प्रतिसरन्तु—साथ चलें; शिवाः—अनुकूल; सचिव्यः—मित्रगण, सखियाँ।

ब्राह्मणों के द्वारा पूजित भगवान् ब्रह्मा ने मुझपर अत्यन्त अनुग्रह करके तुमको मुझे दिया है; इसलिए मैं तुमसे मिल पाया हूँ। मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ना चाहता, क्योंकि मेरे मन तथा नेत्र तुम्हीं पर टिके हुए हैं और वे किसी तरह दूर नहीं किये जा सकते। हे सुन्दर उन्नत उरोजों वाली बाला, मैं तुम्हारा अनुचर हूँ। तुम मुझे जहाँ भी चाहे ले जा सकती हो और तुम्हारी सखियाँ भी मेरे साथ चल सकती हैं।

तात्पर्य : अब आग्नीध्र अपनी दुर्बलता को बिना झिझक के स्वीकार करता है। वह पूर्वचित्ति पर मोहित था, अतः इसके पूर्व कि वह यह कहे कि मुझे तुमसे क्या प्रयोजन, वह उसके साथ विवाह करने की इच्छा व्यक्त करता है। वह इतना मोहित था कि उसके साथ कहीं भी जाने को तैयार था, चाहे वह स्वर्ग हो या नरक। जब कोई कामासक्त हो उठता है, तो वह बिना किसी शर्त के स्त्री के समक्ष आत्म-समर्पण कर देता है। इस सम्बन्ध में श्रील मध्वाचार्य का कथन है कि जब कोई सनकी व्यक्ति की तरह हँसी-मजाक करने लगता है, तो वह कुछ भी कह सकता है, किन्तु उसके शब्द निरर्थक होते हैं।

श्रीशुक उवाच
इति ललनानुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिरधिसभाजयामास. ॥ १७॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; ललना—स्त्रियाँ; अनुनय—जीतने में; अति-विशारदः—अत्यन्त पटु; ग्राम्य-वैदग्ध्यया—अपनी इच्छाओं को पूरा करने में पटु; परिभाषया—चुने शब्दों से; ताम्—उस; विबुध-वधूम्—देव-कन्या को; विबुध-मतिः—देवताओं के तुल्य बुद्धि वाले आग्नीध्र ने; अधिसभाजयाम् आस—प्रसन्न कर लिया।

श्रील शुकदेव गोस्वामी आगे बोले—महाराज आग्नीध्र देवताओं के समान बुद्धिमान और स्त्रियों को रिझा करके अपने पक्ष में कर लेने की कला में अत्यन्त निपुण थे। अतः उन्होंने उस स्वर्गकन्या को अपनी कामपूर्ण वाणी से प्रसन्न करके उसको अपने पक्ष में कर लिया।

तात्पर्य : चूँकि राजा आग्नीध्र भक्त था, अतः वास्तव में भौतिक सुख की उसे तनिक भी इच्छा नहीं थी, किन्तु अपना वंश चलाने के लिए उसे पत्नी की आवश्यकता थी और भगवान् ब्रह्मा ने

पूर्वचित्ति को इसी प्रयोजन के लिए भेजा था, अत: उसने अपनी मीठी वाणी से उसे रिझा लिया। स्त्रियाँ मनुष्यों की मीठी वाणी से आकृष्ट हो जाती हैं। जो इस कला में दक्ष होता है उसे *विदग्ध* कहते हैं।

सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवय:श्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणं कालं जम्बूद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान्बुभुजे. ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

सा—वह स्त्री; च—भी; तत:—तत्पश्चात्; तस्य—उस; वीर-यूथ-पते:—वीरों के स्वामी की; बुद्धि—बुद्धि; शील—आचरण; रूप—सुन्दरता; वय:—अवस्था (तरुण); श्रिया—ऐश्वर्य; औदार्येण—(तथा) उदारता से; पराक्षिप्त—आकर्षित; मना:—मन वाली; तेन सह—उसके साथ; अयुत—दस हजार; अयुत—दस हजार; परिवत्सर—वर्ष; उपलक्षणम्—विस्तृत; कालम्—काल, समय; जम्बूद्वीप-पतिना—जम्बूद्वीप के राजा के साथ; भौम—पृथ्वी का; स्वर्ग—स्वर्गिक; भोगान्—सुख, भोग; बुभुजे—भोग किया।

आग्नीध्र की बुद्धि, तरुणाई, सौन्दर्य, आचरण, ऐश्वर्य तथा उदारता से आकर्षित होकर पूर्वचित्ति जम्बूद्वीप के राजा तथा समस्त वीरों के स्वामी आग्नीध्र के साथ कई हजार वर्षों तक रही और उसने भौतिक तथा स्वर्गिक दोनों प्रकार के सुखों का भरपूर भोग किया।

तात्पर्य : ब्रह्माजी की कृपा से राजा आग्नीध्र तथा स्वर्ग-कन्या पूर्वचित्ति की युति अत्यन्त अनुकूल सिद्ध हुई। इस प्रकार उन्होंने कई हजार वर्षों तक भौतिक तथा स्वर्गिक सुखों का भोग किया।

तस्यामु ह वा आत्मजान्स राजवर आग्नीध्रो नाभिकिम्पुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान्नव पुत्रानजनयत्. ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उससे; उ ह वा—निश्चय ही; आत्म-जान्—पुत्र; स:—उसने; राज-वर:—राजाओं में श्रेष्ठ; आग्नीध्र:—आग्नीध्र ने; नाभि—नाभि; किंपुरुष—किम्पुरुष; हरि-वर्ष—हरिवर्ष; इलावृत—इलावृत; रम्यक—रम्यक; हिरण्मय—हिरण्यमय; कुरु—कुरु; भद्राश्व—भद्राश्व; केतु-माल—केतुमाल; संज्ञान्—नामक; नव—नौ; पुत्रान्—पुत्रों को; अजनयत्—उत्पन्न किया।

राजाओं में श्रेष्ठ महाराज आग्नीध्र को पूर्वचित्ति के गर्भ से नौ पुत्र प्राप्त हुए जिनके नाम नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व तथा केतुमाल थे।

सा सूत्वाथ सुतान्नवानुवत्सरं गृह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं देवमुपतस्थे. ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सा—वह; सूत्वा—जन्म देकर; अथ—तत्पश्चात्; सुतान्—पुत्रों को; नव—नौ; अनुवत्सरम्—प्रति वर्ष; गृहे—घर पर; एव—निश्चय ही; अपहाय—छोड़कर; पूर्वचित्ति:—पूर्वचित्ति; भूय:—पुन:; एव—निश्चय ही; अजम्—भगवान् ब्रह्मा के; देवम्—देवता; उपतस्थे—पास गई, उपस्थित हुई।

पूर्वचित्ति ने प्रति वर्ष एक-एक करके इन नौ पुत्रों को जन्म दिया, किन्तु जब वे बड़े हो

गये, तो वह उन्हें घर पर छोड़कर ब्रह्मा की उपासना करने के लिए उनके पास उपस्थित हुई।

तात्पर्य : ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जब अप्सराएँ ब्रह्मा या इन्द्र जैसे श्रेष्ठ देवता की आज्ञा से इस पृथ्वी पर अवतरित हुईं, उनकी आज्ञानुसार विवाह किया और सन्तान उत्पन्न करने के बाद अपनी-अपनी पुरियों को पुन: लौट गईं। उदाहरणार्थ, स्वर्गसुन्दरी मेनका, जो विश्वामित्र मुनि को छलने के लिए आई थी, शकुन्तला को जन्म देने के पश्चात् अपने पति तथा अपनी पुत्री दोनों को छोड़कर स्वर्गलोक वापस चली गई। पूर्वचित्ति भी महाराज आग्नीध्र के संग स्थायी रूप से नहीं रही। अपने पति के गृहकार्यों में सहायता करने के पश्चात् वह महाराज आग्नीध्र तथा अपने नौ पुत्रों को त्याग कर ब्रह्मा की आराधना करने के लिए उनके पास लौट गई।

आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहननबलोपेता: पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जम्बूद्वीपवर्षाणि बुभुजु:. ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

आग्नीध्र-सुता:—महाराज आग्नीध्र के सब पुत्र; ते—वे; मातु:—माता के; अनुग्रहात्—अनुग्रह से अथवा माँ का दूध पीकर; औत्पत्तिकेन—सहज; एव—ही; संहनन—सुगठित शरीर; बल—शक्ति; उपेता:—प्राप्त; पित्रा—पिता द्वारा; विभक्ता:—विभाजित; आत्म-तुल्य—अपने ही समान; नामानि—नाम वाले; यथा-भागम्—ठीक से विभक्त; जम्बूद्वीप-वर्षाणि—जम्बूद्वीप के विभिन्न भागों (सम्भवत: एशिया तथा यूरोप दोनों); बुभुजु:—राज्य किया।

अपनी माँ का दूध पीने के कारण आग्नीध्र के नवों पुत्र अत्यन्त बलिष्ठ एवं सुगठित शरीर वाले हुए। उनके पिता ने प्रत्येक को जम्बूद्वीप का एक-एक भाग दे दिया। इन राज्यों के नाम पुत्रों के नामों के अनुसार पड़े। इस प्रकार आग्नीध्र के सभी पुत्र पिता से प्राप्त राज्यों पर राज्य करने लगे।

तात्पर्य : आचार्यों ने इस श्लोक के *मातु: अनुग्रहात्* शब्दों का विशेष उल्लेख करते हुए इनका अर्थ ''उनकी माँ का स्तन-दुग्ध'' किया है। भारतवर्ष में यह आम विश्वास है कि यदि माँ अपने बच्चे को छह मास तक अपने स्तनों का दूध पिलाती है, तो बच्चे का शरीर अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट रहता है। इसके अतिरिक्त इस श्लोक में यह भी इंगित है कि आग्नीध्र के सभी पुत्रों की प्रकृति अपनी माँ के समान थी। *भगवद्गीता* की भी (१.४०) घोषणा है—*स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्कर:*—दूषित स्त्री से वर्णसंकर (अयोग्य) पुत्र उत्पन्न होते हैं और जब वर्णसंकर जनसंख्या बढ़ती है, तो यह संसार नरक बन जाता है। अत: *मनुसंहिता* के अनुसार स्त्री को पवित्र तथा साध्वी रहने के लिए काफी संरक्षण की

आवश्यकता होती है, जिससे उसकी सन्तान मानव समाज के कल्याण में तत्पर हो सके।

आग्नीध्रो राजातृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुन्ध यत्र पितरो मादयन्ते. ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

आग्नीध्रः—आग्नीध्र; राजा—राजा; अतृप्तः—असन्तुष्ट; कामानाम्—इन्द्रियभोग से; अप्सरसम्—स्वर्ग सुन्दरी (पूर्वचित्ति) के विषय में; एव—निश्चय ही; अनुदिनम्—दिनोंदिन; अधि—अत्यधिक; मन्यमानः—सोचते हुए; तस्याः—उसका; स-लोकताम्—उसी लोक को; श्रुतिभिः—वेदों से; अवारुन्ध—प्राप्त किया; यत्र—जहाँ; पितरः—पूर्वज, पितृगण; मादयन्ते—आनन्द लेते हैं।

पूर्वचित्ति के चले जाने पर, अतृप्त वासना के कारण राजा आग्नीध्र उसी के विषय में सोचते रहते। अतः वैदिक आज्ञाओं के अनुसार राजा मृत्यु के पश्चात् उसी लोक में गये जहाँ उनकी पत्नी थी। यह लोक पितृलोक कहलाता है जहाँ कि पितरगण अत्यन्त आनन्द से रहते हैं।

तात्पर्य : यदि कोई किसी के विषय में निरन्तर सोचता है, तो मृत्यु के उपरान्त उसे वैसा ही शरीर प्राप्त होता है। महाराज आग्नीध्र सदा पितृलोक के विषय में सोच रहे थे, जहाँ उनकी पत्नी पहुँची थी, इसलिए मृत्यु के बाद उन्हें वह लोक मिला, जिससे वे उसके साथ पुनः रह सकें। *भगवद्गीता* का (८.६) भी कथन है—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।

तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

''जीव अपना शरीर त्यागते समय जिस किसी भाव (दशा) का स्मरण करता है, वह उसे निश्चय ही प्राप्त करता है।'' अतः हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि हम निरन्तर श्रीकृष्ण का स्मरण करें, अथवा पूर्णतः कृष्णभावनाभावित हो जाँय, तो हमें गोलोक वृन्दावन प्राप्त हो सकता है जहाँ श्रीकृष्ण निरन्तर वास करते हैं।

सम्परेते पितरि नव भ्रातरो मेरुदुहितृर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमिति संज्ञा नवोदवहन्. ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

सम्परेते पितरि—अपने पिता के प्रयाण के पश्चात्; नव—नौ; भ्रातरः—भाई; मेरु-दुहितृः—मेरु की पुत्रियाँ; मेरुदेवीम्—मेरुदेवी; प्रति-रूपाम्—प्रतिरूपा; उग्र-दंष्ट्रीम्—उग्रदंष्ट्री; लताम्—लता; रम्याम्—रम्या; श्यामाम्—श्यामा; नारीम्—नारी; भद्राम्—भद्रा; देव-वीतिम्—देववीति को; इति—इस प्रकार; संज्ञाः—नाम; नव—नौ; उदवहन्—विवाह कर लिया।

अपने पिता के प्रयाण के पश्चात् नवों भाइयों ने मेरु की नौ पुत्रियों के साथ विवाह कर लिया, जिनके नाम मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा तथा देववीति थे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अन्तर्गत ''महाराज आग्नीध्र का चरित्र'' नामक दूसरे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।